नईदुनिया

कायम रखनी होगी देश की न्याय व्यवस्था की साख

डॉ. विश्वास तिवारी

न्यायपालिका को देश की लोकतांत्रिक ढांचे का आधार माना जाता है, जो संविधान की रक्षा और कानून के शासन को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार है। सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और उनके अधीनस्थ न्यायालयों की एकीकृत प्रणाली के साथ यह संस्था स्वंतत्रता और निष्पक्षता के सिद्धांतों पर खड़ी है। हाल ही में दिल्ली हाईकोर्ट के जस्टिस यशंवत वर्मा के घर में जले हुए नोटों की गड्डियां मिली उससे न्यायालयों की साख पर सवाल खड़े किए है। यह एक गंभीर मुद्दा है। ऐसी घटनाओं से न केवल न्यायपालिका पर सवाल उठते है, बल्कि, न्याय की आशा रखने वाली आम जनता का न्यायपालिका से विश्वास उठने लगता है। जिस समय जस्टिस वर्मा के घर से जले हुए नोटों के बंडल बरामद हुए उस समय वह शहर में नहीं थे और पचमढ़ी में छुट्टी मना रहे थे। वापस आकर उन्होंने अपने घर में नोटों के होने की बात को एक सिरे से नकार दिया।

जस्टिस वर्मा ने दावा किया है कि उनके या परिवार के किसी सदस्य द्वारा स्टोर रूम में कभी कोई नगदी नहीं रखी गई थी। इस बयान ने भी कई सवालों को जन्म दिया है। एक सवाल यह उठता है कि कड़ी सुरक्षा में रहने वाले सरकारी आवास में बिना जानकारी के इतना पैसा कैसे रखा जा सकता है? तो क्या यह पैसा घर के कर्मचारियों ने रखा है या किसी बाहरी लोगों ने यह पैसा रखा है। यदि यह वास्तव में जज को फंसाने की साजिश थी, तो उसमें कौन लोग शामिल थे? इसके लिए यह भी देखना होगा कि इस समय वह किसी केस की सुनवाई कर रहे है। अगर इन सवालों के जवाब मिलने में विलंब होगा तो अविश्वास की धुंध और गहरी होगी। वर्ष 1997 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा अपनाएं गए ऐतिहासिक 'न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्कथन' में यह निर्देशित किया गया है कि किसी न्यायाधीश द्वारा ऐसा कोई कार्य या चूक नहीं होनी चाहिए जो उनके उच्च पद और उस पद के प्रति सार्वजनिक सम्मान के अनुरूप न हो। न्यायपालिका में जनता के विश्वास को कम करने वाले किसी भी विवाद की गहरी जांच होनी चाहिए साथ ही इस जांच को निर्धारित समय सीमा में अनिवार्यता रूप से पूरा किया जाना चाहिए। वास्तव में सत्य, न्याय और न्यायिक जवाबदेही के हित में ऐसे मामलों में कार्यवाही को तेजी से आगे बढ़ाने का दायित्व अदालतों और जांच एंजेसियों का है।

हालांकि न्यायपालिका की छवि आमतौर पर सम्मानजनक रही है, लेकिन भ्रष्टाचार के आरोप इसकी विश्वसनीयता को चुनौती दे रही है। भ्रष्टाचार के अलावा भी न्यायपालिका के लिए कई चुनौतियां है। आंकड़ों की माने तो मार्च 2025 तक देश भर में 4.7 करोड़ से अधिक मामले लंबित है। सर्वोच्च न्यायालय के 80 हजार से अधिक और उच्च न्यायालयों में 60 लाख से अधिक मामले विचाराधीन है कालेजियम प्रणाली जो न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए जिम्मेदार है, इसमें भी पारदर्शिता की कमी और भाई-भतीजावाद के आरोप लगते रहे है। इसके आलावा न्यायिक जवाबदेही की कमी भी एक गंभीर मुद्दा है क्योंकि न्यायधीशों को हटाने की प्रक्रिया जटिल है और महाभियोग दुर्लभ है। इसके अलावा, आंतरिक अनुशासन तंत्र कमजोर है जिससे भ्रष्टाचार पर प्रभावी नियंत्रण नहीं हो पाता। मुकदमों की संख्या के आधार पर जजों की संख्या कम है। इनको इतनी, ज्यादा छुट्टी मिलने पर भी सवाल उठाए जाते है। देखा जाए तो हमारे देश में बड़ी संख्या में ग्रामीण और गरीब आबादी को कानूनी सहायता और जागरूकता की कमी का सामना करना पड़ता है। यह असमानता भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है।

जस्टिस वर्मा ने दावा किया है कि उनके या परिवार के किसी सदस्य द्वारा स्टोर रूम में कभी कोई नगदी नहीं रखी गई थी। इस बयान ने भी कई सवालों को जन्म दिया है। एक सवाल यह उठता है कि कड़ी सुरक्षा में रहने वाले सरकारी आवास में बिना जानकारी के इतना पैसा कैसे रखा जा सकता है? तो क्या यह पैसा घर के कर्मचारियों ने रखा है या किसी बाहरी लोगों ने यह पैसा रखा है। यदि यह वास्तव में जज को फंसाने की साजिश थी, तो उसमें कौन लोग शामिल थे? इसके लिए यह भी देखना होगा कि इस समय वह किसी केस की सुनवाई कर रहे है।

हालांकि, शीर्ष अदालत ने विवादों में घिरे जस्टिस वर्मा के प्रति सख्त रवैया अपनाया और उन्हें न्यायिक कामकाज से अलग रखने के निर्देश दिए है। सार्वजनिक विचार-विमर्श में उनका तबादला इलाहाबाद हाईकोर्ट करने की चर्चा भी रही। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने जिस तत्परता से कार्रवाई की और पारदर्शिता बनाये रखने के लिए कदम उठाए, उसे सराहा भी गया। इसमें दिल्ली हाईकोर्ट ने जस्टिस वर्मा के घटनाक्रम से जुड़े कॉल्स को सुरक्षित रखने का आदेश भी दिया। अदालत में जस्टिस वर्मा के पिछले छह माह के कॉल रिकार्ड भी पुलिस से मांगे है। वहीं शीर्ष अदालत ने पुलिस द्वारा रिकार्ड वीडियो, तस्वीरें व शुरूआती जांच रिपोर्ट भी सार्वजनिक विमर्श में पेश कर दी है। न्याय की कुर्सी पर बैठे व्यक्ति से बेदाग होने की उम्मीद की जाती है। इस घटना के बाद उपराष्ट्रपति ने पूछा है कि क्या अदालतों को संवधिान संशोधन विधेयकों की समीक्षा का अधिकार है? वैसे तो संविधान में अलग से ऐसा अधिकार उल्लेखित नहीं है, मगर न्यायपालिका के ऐसे अधिकार को लेकर अब तक कोई प्रश्न नहीं पूछा गया।

इस मामले के बाद उच्च न्यायपालिका में जजों की नियुक्ति और तबादले की मौजूदा कॉलेजियम प्रणाली की जगह क्या राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग यानी एन जेएसी का विकल्प ज्यादा बेहतर है। इस बात पर फिर से बहस शुरू हो गई है।

असल में कॉलेजियम प्रणाली में जज ही जजों की नियुक्ति करते है। ऐसे में वो अपने चहेंतो को ही नियुक्ति करेंगे, जिससे भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा। पिछले कुछ दिनों से सोशल मीडिया पर एक नैरेटिव बनाने का प्रयास किया जा रहा है कि सुप्रीम कोर्ट में जजों के बेटे, बेटियां या भाई-भतीजे ही जज बनते है। इस हवाले से कॉलेजियम प्रणाली को निशाना बनाया जा रहा है। ऐसे में यह संदेह पैदा होता है कि आखिर अचानक न्यायपालिका को क्यों निशाना बनाया जा रहा है? क्यों उनकी छवि खराब की जा रही है।

न्यायधीशों पर भ्रष्टाचार के आरोप न्यायपालिका की विश्वसनीयता को कमजोर कर रहे है। आम लोगों को अब भी विश्वास है कि शीर्ष अदालत द्वारा गठित जांच समिति जल्द से जल्द सच को सामने लाने में पारदर्शी एवं निष्पक्ष कार्रवाई करेगी अन्यथा न्यायिक व्यवस्था की विश्वसनीयता पर आंच आ सकती है।

बैसाखी : संस्कृति, संघर्ष और समर्पण का समागम

बैसाखी (13 अप्रैल) पर विशेष

योगेश कुमार गोयल

कृषि प्रधान देश भारत में बैसाखी पर्व का संबंध फसलों के पकने के बाद उसकी कटाई से जोड़कर देखा जाता रहा है। इस पर्व को फसलों के पकने के प्रतीक के रूप में भी जाना जाता है। इसे विशेष तौर पर पंजाब का प्रमुख त्योहार माना जाता है। वैसे देशभर में बैसाखी को बड़ी धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। सिख समुदाय बैसाखी से ही नए साल की शुरुआत मानते हैं। इस दिन एक-दूसरे को बधाइयां दी जाती हैं। पंजाब में किसान तब अपने खेतों को फसलों से लहलहाते देखता है तो खुशी से झूम उठता है। खुशी के इसी आलम में शुरू होता है गिद्दा और भांगड़ा का मनोहारी दौर। पंजाब में ढोल-नगाड़ों की धुन पर पारम्परिक पोशाक में युवक-युवतियां नाचते-गाते और जश्न मनाते हैं तथा सभी गुरुद्वारों को फूलों तथा रंग-बिरंगी रोशनियों से सजाया जाता है।

उत्तर भारत और विशेषकर पंजाब तथा हरियाणा में गिद्दा और भांगड़ा की धूम के साथ मनाए जाने वाले बैसाखी पर्व के प्रति भले काफी जोश देखने को मिलता है लेकिन वास्तव में यह त्योहार विभिन्न धर्म एवं मौसम के अनुसार देश के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग नामों से मनाया जाता है। पश्चिम बंगाल में इसे 'नबा वर्ष' के नाम से मनाया जाता है तो केरल में 'विशू' नाम से तथा असम में यह 'बीहू' के नाम से मनाया जाता है। बंगाल में 'पोइला बैसाखी' भी कहा जाता है और वे अपने नए साल की शुरुआत मानते हैं। हिन्दू धर्म की पौराणिक मान्यताओं के अनुसार हजारों साल पहले इसी दिन मां गंगा का पृथ्वी पर अवतरण हुआ था इसीलिए इस दिन गंगा आरती करने तथा पवित्र नदियों में स्नान की भी परम्परा रही है।

13 अप्रैल 1919 को बैसाखी का दिन आज भी अंग्रेजों की बर्बरता और जुल्मों की दास्तान बयां करता है। दरअसल, रोलट एक्ट के विरोध में अपनी आवाज उठाने के लिए इस दिन हजारों लोग जलियांवाला बाग में इकट्ठा हुए थे। 'रोलट एक्ट' के तहत न्यायाधीशों और पुलिस को किसी भी भारतीय को बिना कोई कारण बताए और उन पर बिना कोई मुकद्दमा चलाए जेलों में बंद करने का अधिकार दिया गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आह्वान पर भारतवासियों में इस कानून के खिलाफ जबरदस्त आक्रोश उमड़ पड़ा था। इस काले कानून के विरोध में अमृतसर के जलियांवाला बाग में हजारों लोगों की एक विशाल जनसभा हुई थी लेकिन अंग्रेज सरकार ने बहुत खतरनाक षड्यंत्र रचकर जलियांवाला बाग में एकत्रित हुए लोगों को चारों ओर से घेरकर बिना किसी पूर्व चेतावनी के अंधाधुंध गोलियां बरसानी शुरू कर दी। उस दर्दनाक हत्याकांड में सैंकड़ों भारतवासी शहीद हो गए थे।

बैसाखी को सूर्य वर्ष का प्रथम दिन माना गया है क्योंकि इसी दिन सूर्य अपनी पहली राशि मेष में प्रविष्ट होता है और इसीलिए इस दिन को 'मेष संक्रांति' भी कहा जाता है। यह मान्यता रही है कि सूर्य के मेष राशि में प्रवेश करने के साथ ही सूर्य अपनी कक्षा के उच्चतम बिन्दुओं पर पहुंच जाता है और सूर्य के तेज के कारण शीत की अवधि खत्म हो जाती है। इस प्रकार सूर्य के मेष राशि में आने पर पृथ्वी पर नवजीवन का संचार होने लगता है। इस तरह बैसाखी खुशियों का त्योहार है। बैसाखी का पवित्र दिन हमें गुरु गोबिन्द सिंह जैसे महापुरुषों के महान् आदर्शों एवं संदेशों को अपनाने तथा उनके पद्चिन्हों पर चलने के लिए प्रेरित करता है और हमें यह संदेश भी देता है कि हमें अपने राष्ट्र में शांति, सद्भावना एवं भाईचारे के नए युग का शुभारंभ करने की दिशा में सार्थक पहल करनी चाहिए।

ब्रह्म नित्य हैं, जगत् अनित्य

हृदयनारायण दीक्षित

संस्कृति मनुष्यता के सत्कर्मों का शिव और सौंदर्य है। यह राष्ट्र की आत्मा होती है। राष्ट्र किसी सुनिश्चित भूमि पर लोगों के रहने के आधार पर ही नहीं बनते। भूमि, जन और राजव्यवस्था से राज्य बनते हैं। लेकिन राष्ट्र निर्माण का महत्वपूर्ण घटक संस्कृति है। संस्कृति का मूल आधार दर्शन होता है। राष्ट्र का दार्शनिक चिंतन ही राष्ट्र जीवन का बीज है। यही संस्कृति को विकसित होने की प्रेरणा देता है। कुछ विद्वान दर्शन को बौद्धिक कार्यवाही कहते हैं। प्रत्यक्ष, प्रमाण, अनुमान, तर्क, संशय, संदेह और सकारात्मक चिंतन के मूल उपकरण हैं। भारतीय दर्शन की प्रतिष्ठा समूचे विश्व में है। दार्शनिक विकास भी 100-50 वर्षों का काम नहीं है।

भारत में हजारों वर्ष पीछे से सांस्कृतिक निरंतरता का प्रवाह है। इस सांस्कृतिक विकास को दर्शन और विज्ञान की धाराओं ने लगातार मजबूत किया है। दुनिया के अधिकांश देशों में सांस्कृतिक विकास के पहले दर्शन नहीं था। समाज ने उन्नति की। पंथ और संप्रदाय ने सामाजिक जीवन को नियंत्रित किया। शुभ और अशुभ की विभाजक रेखाएं विकसित हुईं। पंथिक विकास के क्रम में विश्वास का वातावरण बना। इस विकास में तर्क और संशय नहीं थे। पंथ और विश्वास बढ़ते गए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्वीकारने का साहस नहीं हुआ। विचार अंधविश्वास हो गए।

भारत में ऐसा नहीं हुआ। भारत में दर्शन का जन्म जिज्ञासा से हुआ है। आदिम समाज में धरती, आकाश, सूर्य, और चन्द्र के प्रति जिज्ञासा थी। इस जिज्ञासा ने सोच, विचार और अध्ययन के नए रास्ते खोल दिए। तर्क चले। कुतर्क भी चले। लेकिन दर्शनाभिलाषी सतर्क रहे। तर्क ही यहाँ मार्गदर्शक रहा है। मूर्ति देव प्रतीक होती हैं। यह साधारण पत्थर या मिट्टी नहीं है। इसलिए मंदिर में जाने को दर्शन करना कहा जाता है। सतत् विवेचन से दर्शन की प्रतिष्ठा बढ़ी। विज्ञान और दर्शन में अंधविश्वास को जगह नहीं है। संकीर्णता के लिए भी कोई स्थान नहीं है। पूर्वजों ने समूचे अस्तित्व को एक इकाई जाना था। वैदिक काल में दार्शनिक चिंतन की सुस्पष्ट धारा दिखाई पड़ती है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय रहा है। इस सूक्त के प्रत्येक शब्द में जिज्ञासा का अमृतघट उफनाता दिखाई पड़ता है। सूक्त के रचयिता ऋषि परमेष्ठिन हैं। कहते हैं, 'तब न सत् था, न असत। न दिवस था न रात्रि। कौन जानता है कि पहले क्या था? सृष्टि का अध्यक्ष भी नहीं जानता होगा कि सबसे पहले क्या था?' -यह सूक्त सृष्टि रहस्यों की जिज्ञासा से जुड़ा है। तब से लेकर प्राचीन भारतीय दर्शन में तर्क, बहस और शास्त्रार्थ जीवंत परंपरा है। गीता और उपनिषदों में यही परंपरा आज तक जारी है। यह धारा बेशक किसी न किसी कालखण्ड में मध्यम भी रही है।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया है कि, 'यह ज्ञान मैंने सूर्य को, सूर्य ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को बताया था। समय के अंतराल में यह ज्ञान लुप्त हुआ। अब मैं तुमको वही ज्ञान दे रहा हूं।' ज्ञान सदा रहता है। सनातन है ज्ञान का तत्व। भारत की धरती पर मूल ज्ञान को युग अनुसार बनाए रखने वाले महानुभावों की लम्बी परंपरा है। यह ज्ञान सबसे पहले ऋग्वेद में, फिर उपनिषदों में, दार्शनिक चिंतन में, गीता और ब्रह्मसूत्र में दिखाई पड़ता है। रामायण में इसी ज्ञान के प्रतिरूप मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। गीता में श्रीकृष्ण हैं। बुद्ध, महावीर भी इसी धारा के शीर्ष व्यक्तित्व हैं। सांख्य दर्शन के ऋषि कपिल हैं। योग दर्शन के पतंजलि हैं। इसी परंपरा में विवेकानंद, दयानंद जैसे महान व्यक्तित्व हैं। इन सबके बीच अद्वैत दर्शन के प्रचारक शंकराचार्य हैं। शंकराचार्य ने अपने शोध, बोध व आचरण से वैदिक दर्शन को भारतीय स्वाभिमान का सनातन तत्व पाया है। उन्होंने अल्प आयु में ही गीता, ब्रह्मसूत्र और तमाम उपनिषदों का भाष्य किया है। पूरे देश की यात्राएं की। वेदांत दर्शन पर तमाम तर्क हुए। विद्वानों ने तमाम प्रश्न पूछे। शंकराचार्य ने सभी प्रश्नों के उत्तर दिए। ईश्वर और मोक्ष जैसे गूढ़ और जटिल विषयों पर उनकी व्याख्या अद्भुत है।

शंकराचार्य की दार्शनिक अनुभूति का प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा ही था। उन्होंने लम्बी दूरी की यात्राएं की। व्यापक जनसम्पर्क किया। उन्होंने शास्त्रार्थ में बौद्ध विद्वानों को भी प्रभावित किया। शंकराचार्य के समय बौद्ध पंथ का प्रभाव फैल रहा था। राज्याश्रयी होने के कारण बुद्ध विचार के प्रचार का काम भी सरल था। वेदांत का तत्व विवेचन आसान नहीं पर आचार्य शंकर ने शब्द गर्भ में पैठकर सार और असार का अनावरण किया है। दर्शन का अर्थ है-सत्यानुभूति, लेकिन सत्य की अनुभूति आसान नहीं। यह प्रवचन से असंभव है। मेधा शक्ति भी आत्म तत्व तक नहीं पहुँचती है। तर्क से भी बात नहीं बनती। सामान्यतया भक्ति, संन्यास और योग कर्म ईश्वर की प्राप्ति के उपकरण माने जाते हैं, लेकिन शंकराचार्य इनमें से किसी उपकरण को ब्रह्म अनुभूति का साधन नहीं मानते।

शंकराचार्य के वास्तविक समय के सम्बंध में मतभेद है। वैसे, अधिकांश विद्वानों के अनुसार उनका समय 788 ई. से 820 ई. तक माना जाता है। इसका मुख्य ग्रंथ ब्रह्मसूत्र है। उनके दर्शन से भारतीय ज्ञान साधना ने आकाश जैसी ऊंचाई पाई। वेदांत दर्शन भारतीय राष्ट्रभाव का प्रतिनिधि दर्शन है। ब्रह्मसूत्र ब्रह्म जिज्ञासा से प्रारंभ होता है। दार्शनिक परंपरा में ब्रह्म को लेकर काफी तर्क चले हैं। शंकराचार्य ने ब्रह्म को सत्य बताया है और संसार को मिथ्या। वेदांत दर्शन के जानकारों के लिए यह कोई नई बात नहीं है लेकिन विराट को प्रकट करने के लिए शब्द अर्थ ही पर्याप्त नहीं होते।

शंकराचार्य का ब्रह्म समूचे अस्तित्व में कण-कण में व्याप्त है। इसका न जन्म होता है और न मृत्यु। यह अजन्मा है। सदा से है। सदा रहता है। शंकर ने इसे नित्य कहा है। नित्य का अर्थ है कि इस पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता है। ब्रह्म काल के भीतर भी है और बाहर भी है। काल अबाधित है। इसका बोध भक्ति से नहीं होता। इसके विपरीत संसार के प्रत्येक पदार्थ कालाधीन हैं। काल प्रभाव में है। नदियां अपने संगीत में बहती हैं। नदी का जन्म शिखर ऊंचाई पर पत्थर की खोह से निकले जल से होता है। जल अपनी प्रकृति में रसपूर्ण और प्रवाहमान है। सदा ऊपर से नीचे की ओर बहता है। नदी नाद आनंददायी है लेकिन नदियां नित्य नहीं अनित्य हैं। काल के अधीन हैं। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में नदीतमा रही सरस्वती भयावह जल प्रलय के समय खण्डों में टूट गई। संसार की प्रत्येक वस्तु काल के अधीन है। जीवन की भी अवधि होती है। इसलिए सारी वस्तुएं पदार्थ और प्राणी अनित्य हैं। वे ब्रह्म की तरह नित्य नहीं हैं। ब्रह्म नित्य हैं, जगत् अनित्य है। जगत् को शंकर ने मिथ्या कहा है। मिथ्या का अर्थ अस्तित्वविहीन होना नहीं है। जो क्षणभंगुर है, वही शंकराचार्य की दृष्टि में मिथ्या है और जिस पर भूत, भविष्य, वर्तमान का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जो सभी कालों, दशाओं और दिशाओं में उपस्थित रहता है, वह ब्रह्म है।

गांवों में आज भी मजबूत है सामाजिक रिश्तों की डोर...

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

नाबार्ड की इस साल मार्च में जारी रिपोर्ट से जहां संतोष होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में संस्थागत ऋण प्रवाह का दायरा बढ़ा है, वहीं यह चिंता की बात है कि जरूरत के समय गैर संस्थागत स्रोतों से कर्ज लेने वाले ग्रामीणों में करीब साढ़े सात फीसदी लोगों को 50 फीसदी से भी अधिक ब्याज दर से कर्ज चुकाना पड़ रहा है। इससे साफ है कि एक बार गैर संस्थागत स्रोत से कर्जदार बने तो फिर कर्ज के मकड़जाल से निकलना असंभव नहीं तो बहुत मुश्किल जरूर है।

नाबार्ड की रिपोर्ट को आधार मानकर चलें तो पिछले साल सितंबर में जुटाये गए आंकड़ों के अनुसार 17.6 फीसदी लोग अपनी तात्कालिक आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए गैर संस्थागत स्रोतों पर निर्भर हैं। हालांकि इसमें करीब साढ़े तीन फीसदी का सुधार है। पहले 21.1 प्रतिशत ग्रामीण अपनी ऋण जरूरतों को पूरा करने के लिए गैर संस्थागत स्रोतों पर निर्भर थे। हमारी ग्रामीण संस्कृति की इस खूबी की सराहना करनी पड़ेगी कि आज भी 31.7 प्रतिशत रिश्तेदार या परिचित ऐसे हैं जो दु:ख-दर्द में भागीदार बनते हैं और ऐसे समय में उपलब्ध कराये गये धन पर किसी तरह का ब्याज नहीं लेते। रिश्तेदारों या परिचितों से इस तरह की धन की आवश्यकता कुछ समय के लिए ही होती है और समय पर लौटा दिया जाता है। यह तथ्य भी नाबार्ड द्वारा जारी रिपोर्ट से ही उभर कर आया है।

चाहे ग्रामीण हों या शहरी ऐसी आवश्यकताएं आ ही जाती हैं, जिनके लिए तत्काल धन की जरूरत होती है। अन्य कोई सहारा नहीं देखकर व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रिश्तेदार, परिचित, साहूकार, दोस्त, कमीशन एजेंट या रुपये उधार देने वाले लोगों के सामने हाथ पसारते हैं। अब इनमें से बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो व्यक्ति की मजबूरी का फायदा उठाने में किसी तरह का गुरेज नहीं करते और मजबूरी का फायदा उठाते हुए 50 से 60 प्रतिशत तक ब्याज लेने में भी हिचकिचाहट नहीं दिखाते। रिपोर्ट के अनुसार ऋण लेने वाले करीब 40 फीसदी ग्रामीणों को 15 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक का ब्याज देना पड़ता है। 0.9 प्रतिशत को 60 प्रतिशत या 6.6 फीसदी को 50 प्रतिशत से अधिक की ब्याज दर पर ऋण को चुकाना पड़ता है। साफ है कि आजादी के 75 साल बाद भी सूदखोरों का बोलबाला बना हुआ है।

संस्थागत ऋणों में भी यदि हम पर्सनल लोन की बात करें तो वह भी करीब 15 से 20 प्रतिशत पर बैठता है और यदि किसी कारण से कोई किस्त बकाया रह गई तो पेनल्टी दर पेनल्टी का सिलसिला काफी गंभीर व कर्ज के मकड़जाल में फंसाने वाला हो जाता है।

एक बात और, शहरों और ग्रामीण इलाकों में कुछ लोगों या संस्थाओं द्वारा दैनिक आधार पर पैसा कलेक्शन करने और दैनिक आधार पर ऋण देने का कार्य किया जाता है। इस तरह के लोगों या संस्थाओं द्वारा भले दैनिक आधार पर दस रुपये के ग्यारह रुपये शाम को देना आसान लगता हो पर इस किस्त का चूकना और मासिक आधार पर गणना की जाये तो यह बहुत मंहगा होने के साथ जरूरतमंद लोगों की मजबूरी का फायदा उठाने से कम नहीं है। रोजमर्रा का काम करने वाले वेण्डर्स इस तरह की श्रेणी में आते हैं। कहने को चाहे 40 प्रतिशत ही हो पर इनके द्वारा 20 प्रतिशत से 60 प्रतिशत की ब्याजदर से ब्याज राशि वसूलना किसी भी तरह से सभ्य समाज के लिए उचित नहीं कहा जा सकता।

देश में संस्थागत ऋण उपलब्धता बढ़ी है पर ताजा रिपोर्ट के अनुसार 17.6 प्रतिशत ग्रामीणों का साहूकारों या अन्य स्रोतों पर निर्भर रहना उचित नहीं माना जा सकता। यदि ब्याज दर 20, 30, 40 या 50 प्रतिशत होगी तो प्रेमचंद के गोदान या इसी तरह की साहूकारी व्यवस्था व आज की व्यवस्था में क्या अंतर रह जाएगा। इतना जरूर है कि रिश्तों की डोर आज भी मजबूत है और इसकी पुष्टि नाबार्ड की रिपोर्ट करती है कि ग्रामीण क्षेत्र में 31.7 प्रतिशत कर्जदार रिश्तेदारों और परिचितों पर निर्भर हैं। ये लोग रिश्तों का लिहाज करते हुए जरूरत के समय एक-दूसरे का आर्थिक सहयोग करते हैं और बदले में किसी तरह का ब्याज नहीं लेते। आने वाले समय में भी हमें रिश्तों की इस डोर को मजबूत बनाये रखना होगा और सरकार को आगे आकर एक सीमा से अधिक ब्याज वसूलने वालों पर सख्ती दिखानी होगी।